विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-
आजीवन शुल्क रु. ५००/-

बुद्धवर्ष 2561, आषाढ़ पूर्णिमा 9 जुलाई, 2017, वर्ष 47, अंक 1

For online Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु, "ओघतिण्णो"ति वुच्चति॥

धम्मपदपालि- ३७०, भिक्खुवग्गो.

(सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामराग और व्यापाद - इन) पांच (अवरभागीय संयोजनों) का छेदन करे, (रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या - इन) पांच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को छोड़ दे, और तदुपरांत (इनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा - इन) पांच (इंद्रियों) की भावना करे। जो भिक्षु (साधक) पांच आसक्तियों (राग, द्वेष, मोह, मान और दृष्टि) का अतिक्रमण कर चुका हो, वह (काम, भव, दृष्टि तथा अविद्या रूपी चार प्रकार की) बाढ़ों को पार किया हुआ 'ओघतीर्ण' कहा जाता है।

भीतर का मैल कैसे उतरे!

(पुराने साधकों के लिए प्रवचन- भाग-३, लक्खमसी नप्पू हॉल, बम्बई : जुलाई २०, १९८६) (भाग-१, मार्च-१७, भाग-२, जून-१७, भाग-३ वर्तमान)

(क्रमशः ...३)

मेरी प्यारी धर्म-पुत्रियो! मेरे प्यारे धर्म-पुत्रो!

... पुरानी आदत बार-बार पुराने स्वभाव की ओर खींचेगी। नया अभ्यास, नया पराक्रम बार-बार उस स्वभाव को तोड़ेगा। पुरानी आदत को तोड़ करके, अच्छी आदत सजग और समता में रहने वाली आदत को पुष्ट करेगी। अतः यह रोज-रोज का अभ्यास करना ही पड़ेगा! हम जो कहते हैं - करना शुरू कर दोगे तो मंगल मैत्री अपने आप खिंची चली आयगी, यह चमत्कार की बात नहीं, कुदरत का बँधा-बँधाया नियम है। जैसे ही हम अपने चित्त में राग-द्वेष की तरंगें पैदा करने के बजाय भले थोड़े क्षण ही वीतरागता की तरंगें पैदा करने लगे; घंटे-भर की बैठक में थोड़े से क्षण ही ऐसे आये जब हमने अंतर्मन की गहराइयों तक राग नहीं जगने दिया तब वीतरागता, वीतद्वेषता की तरंगें जागीं न! और जब-जब हम ये तरंगें जगाते हैं तब-तब सारे विश्व में जहां भी कोई संत, सदगुरु, सम्यक देव, सम्यक ब्रह्म वीतरागता की तरंगें जगाने का काम कर रहा है, उसकी उन तरंगों के साथ समरस हुए जा रहे हैं, ट्यूनअप (tune-up) होते जा रहे हैं, उनके समीप आ रहे हैं। कुदरत अपने आप काम करने लगती है, हमें कुछ नहीं करना पड़ता।

हमें अपनी ओर से घंटे भर यही करना है कि राग-द्वेष वाली तरंगें कैसे बंद करें और वीतरागता-वीतद्वेषता की तरंगें कैसे जगायें! हम भी जानते हैं, कठिनाई होती है। बैठते ही वह बात याद आयी – उसने ऐसा कह दिया रे! उसने ऐसा कर दिया रे! यह बहू देखो कैसी गयी-गुजरी रे! यह सास देखो कैसी गयी-गुजरी रे! यह बेटा... ! यह फला.., दिन भर जिन उपद्रवों को लेकर के हमने राग-द्वेष जगाया; ध्यान में बैठे तो वही जागा। जागे, जागने दो, घबराओ मत, दबाओ मत। जो कूड़ा-करकट इकट्ठा किया है, वह फूट कर बाहर आना ही चाहिए। वह भी जाग रहा है और साथ-साथ हम सांस को भी जान रहे हैं। बहुत अच्छा हो, यदि उसके साथ-साथ संवेदना को भी जान रहे हैं। तब उदीर्णा होती जायगी, निर्जरा होती जायगी, क्षय होता जायगा। यानी, जो नया-नया मैल हमने चढ़ा लिया था, वह तो उतरा। यदि रोज-रोज का मैल उतार ले तो भी बहुत बड़ी बात हो गयी। और रोज-रोज का मैल उतारने की आदत हो गयी तो देखेंगे कि रोज-रोज की बैठक में जरा-जरा भीतर का मैल भी उतरने लगा। भीतर का मैल तब उतरता है जब पहले ऊपर का तो उतर जाय। हम तो ऊपर का ही नहीं उतारते।

कोई-कोई साधक-साधिका आती हैं – क्या करें? अखिर तो उसी जंजाल में रहना है हमको। सारे दिन-रात यही राग-द्वेष, क्रोध, भय ही तो जगाना है। थोड़ी देर सुबह-शाम कर लेंगे तो उससे क्या होगा? अजीब तर्क है! कोयले की खान में काम करने वाला आदमी कहे कि मैं नहा कर क्या करूं? कोयले के खान में तो फिर जाना है, फिर उसी तरह काला, मैला हो जाना है। मैं नहा कर क्या करूं? अरे! तुझे तो ज्यादा नहाना है भाई! तू कोयले के खान में जाने वाला है न! रोज जाता है न! अरे, तो रोज-रोज राग-द्वेष जगाने वाले को तो रोज-रोज इस धर्म के साबुन का इस्तेमाल करना चाहिए। जितना नया चढ़ाया वह तो साफ कर लें। नया साफ कर लेंगे तो पुराना भी थोड़ा-थोड़ा निकलने लगेगा, साफ होने लगेगा। यह तो चढ़ेगा ही, यह तो हमारी आदत हो गयी है, ऐसा तो होगा ही; ऐसा सोचे तो भाई घुटने टेक दिए न! तब तो दुःख रहेगा ही, छुटकारा होने वाला नहीं। रोगी रहेंगे ही, हम कभी निरोगी होने वाले नहीं। बंधन रहेगें ही, हम कभी मुक्त होने वाले नहीं। अरे भाई! परिश्रम करना पड़ेगा, समझदारी के साथ परिश्रम करना पड़ेगा।

जब-जब देखो कि इस तरह की कठिनाई आने लगी – बैठे हैं ध्यान में और थोड़ी देर के लिए भी यों लगता है कि मन संवेदना में नहीं लग रहा; तो इसीलिए साधना के दो हिस्से सिखाए – एक सांस की साधना, एक संवेदना की साधना। संवेदना को जानते हुए अगर हमने समता का अभ्यास किया तो अंतर्मन की गहराइयों तक हमने सुधारने का काम कर दिया। मानस हमारा इतना उथल-पुथल कर रहा है कि संवेदना को नहीं जान पाये तो सांस का ही काम करें। सांस का भी मन से बड़ा गहरा सबंध है। शुद्ध सांस को देखते चले जायँ। उसको भी नहीं देख पाते तो सांस को जरा-सा तेज कर लें। संवेदना को तो हम चाहें तो भी तेज नहीं कर सकते, अपने स्वभाव से न जाने कहां, क्या संवेदना होगी, कैसी होगी? लेकिन सांस को तो हम प्रयत्न पूर्वक तेज कर सकते हैं। जरा प्रयत्न पूर्वक सांस लेना शुरू कर दिया। विचार भी उठ रहे हैं, तूफान भी उठ रहे हैं; भीतर ही भीतर सब जंजाल चल रहे हैं, फिर भी सांस को जाने जा रहे हैं। तूफान भी उठता है, सांस को भी जानते हैं; तूफान भी उठ रहा है... सफाई का काम चल रहा है, मत घबरायें।

इस बात से मत घबरायें कि हमारे मन में ये विचार क्यों उठ

रहे हैं? पहले विचार शांत होंगे, उसके बाद सफाई होगी; ऐसा बिल्कुल नहीं। अगर सांस या संवेदना को साथ-साथ जान रहे हैं और उनके प्रति समता का भाव बनाने की कोशिश कर रहे हैं, भले थोड़ी-थोड़ी देर ही समता रहती है, बाकी समय उसी तरह प्रतिक्रिया करते हैं, तो भी कुछ नहीं खोया; लाभ ही हुआ। धर्म का रास्ता ऐसा है कि इस पर जरा-सा भी परिश्रम करें तो निष्फल नहीं जाता। परिश्रम करें तो अच्छा फल मिलेगा ही। निरर्थक कुछ होता ही नहीं। अतः उत्साह के साथ, उमंग के साथ काम करते रहना चाहिए।

एक और कठिनाई आती है। जब धर्म के रास्ते चलना शुरू कर देते हैं तब बार-बार दीवारें आती हैं सामने, बार-बार जी घबराता है कि भाई रास्ता तो अच्छा है, सचमुच इससे कल्याण होने वाला है, देखो अमुक-अमुक का कल्याण हुआ, हो रहा है; पर मुझसे नहीं होगा भाई! मैं नहीं कर पाऊंगा। यूं आदमी अपने भीतर कायरता का भाव, एक हीन भाव पैदा करने लगता है तो सचमुच आगे नहीं बढ़ पायगा।

मन में यह उत्साह बना रहे कि जो प्रयत्न करता है वह देर-सबेर सफल होगा ही। मुझको प्रयत्न करना ही है, यह दृढ़ता। और यह दृढ़ता क्यों नहीं आती? इसके तीन मोटे-मोटे कारण पुराने समय से हैं, आज भी हैं, और अनेक साधकों का अनुभव हमारे सामने है।

एक बहुत बड़ा कारण– धर्म के शिविर में आये तो भी, न आये तो भी, यह बात तो खूब सुनी है कि शील-सदाचार का पालन करना चाहिए। अच्छी बात है, शील-सदाचार का पालन करना ही चाहिए, इसमें दो मत कैसे हो सकते हैं। लेकिन कठिनाई वहां आती है जब किसी शील को खींच कर एक अति तक ले जाय और यह समझे कि अब तो मुक्त हो ही जाऊंगा। मेरा शील देखो कितना.पुष्ट! उसको देखो, उसका शील कैसा गया-गुजरा! मेरा शील कैसा महान... !

ऐसे ही कोई आदमी कोई व्रत करता है, अच्छी बात है। व्रत रखना कोई बुरी बात नहीं है। व्रत या उपवास करता है, और फिर उसे खींचता है– देख, मैं ऐसा व्रत करने वाला, ऐसा उपवास करने वाला! मेरे जैसा धर्मवान कौन होगा? बस, बाकी सब गये-गुजरे, मैं सबसे बड़ा! सबसे महान! सबसे धर्मवान! इसको उन दिनों की भाषा में कहा 'शीलव्रत परामर्श', शील और व्रतों के प्रति आसक्ति पैदा कर ली। यह मान करके अपने को संतुष्ट कर लेना कि शील और व्रतों से ही मैं मुक्त हो जाऊंगा, झूठ है। शील बहुत आवश्यक है। पर केवल शील हमें मुक्त कर दे, यह असंभव बात है। इसकी नाव इतनी बड़ी, मेरी और भी बड़ी, और भी बड़ी...। पर तट के किनारे ही लिए बैठे रहे, नौका को पानी में उतारते नहीं। भाई! यह शील क्या काम आया रे! अच्छी से अच्छी बात भी अगर समझदारी से नहीं की गयी तो बाधक बन जायगी। समझदारी से करने का मतलब यह कि जिस काम का जितना उपयोग है, उसका उतना ही उपयोग हो। उसके आगे जो कदम उठाने हैं, वे उठ रहे हैं कि नहीं? धर्म का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। शील, समाधि, प्रज्ञा– सारा का सारा धर्म एक साथ बढ़ता चला जाय तो विकारों से मुक्त होते जायँ।

कोई बच्चा जन्में और कुछ ऐसा संयोग हो गया की उसका एक पांव बढ़ता गया, बढ़ता गया, बाकी शरीर वैसा का वैसा रहा; खूब बढ़ गया एक पांव! तो उस बच्चे को क्या कहेंगे? रोगी कहेंगे न! उसका रोगी शरीर नहीं बढ़ता, केवल एक पांव बढ़ा। अरे, जो पांव बढ़ा, वह भी रोगी क्योंकि सर्वांगीण विकास नहीं हुआ। अकेला बढ़ता पांव किसी काम का नहीं। ऐसे ही धर्म का केवल एक अंग बढ़ाते चले गये, खींचते चले गये, दूसरे अंगों को विकास करने का मौका ही नहीं दिया तो रोगी हो जायँगे। इसलिए शिविर में आते ही कहते हैं– दस दिनों तक शील का कड़ाई से पालन करो, नहीं तो समाधि का काम नहीं कर पाओगे। समाधि का काम ठीक से नहीं कर पाओगे तो प्रज्ञा नहीं जगा पाओगे। यह तो आरंभ करने के लिए, घर आये तो फिर शील, समाधि, प्रज्ञा– तीनों विकसित होते जायँ।

पहले के भारत में भी ऐसी कठिनाईयां थीं। लोगों के मन पर ऐसी छाप पड़ी कि हम किसी एक शील को पकड़ लेगें और उसे खींच के ले जायँगे; बस, हमारा क्या कहना! हम तो इतना शील पालन करने वाले! ऐसे ही कोई व्रत, उपवास करेंगे; अरे, हमारा क्या कहना! हम तो इतना व्रत करने वाले! यह बात पुराने भारत में भी थी और आज भी है। उससे बचो भाई! अच्छा है, शील पालन करो। किसी को व्रत-उपवास करना है; करो, उसका विरोध नहीं। लेकिन साथ-साथ समाधि एवं प्रज्ञा जगाने वाले काम को मत भूल जाओ। अन्यथा अंतर्मन की गहराइयों तक धर्म में पुष्ट नहीं हो सकते। अपने इस अंतर्मन के बिगड़े हुए स्वभाव को नहीं बदल सकते।

एक और कठिनाई आती है, पुराने भारत में भी और आज भी देखते हैं-- दार्शनिक मान्यताएं। दृष्टिराग है, अपनी-अपनी दार्शनिक मान्यता के प्रति इतना गहरा राग! इतनी गहरी आसक्ति! मेरी दार्शनिक मान्यता ही ठीक। वही सम्यक दर्शन, बाकी सब की गलत। अरे, तेरी मान्यता ही है न; जान्यता तो नहीं! तूने जाना नहीं, केवल मान रहा है न! जो बात किसी अन्य ने कहा और तूने मान लिया; कोई पुस्तक कहती है, और तूने मान लिया। तूने तो कुछ नहीं जाना और उसके प्रति इतना गहरा चिपकाव पैदा कर लिया तो आगे बढ़ नहीं पायगा धर्म में। और जितने बंधन हैं– राग का, द्वेष का, प्रयत्न करने पर टूट जाता है; लेकिन दृष्टि का बंधन, दार्शनिक मान्यताओं का बंधन, उसको तोड़ने का प्रयत्न ही नहीं करते। उसे तो समझते हैं कि यह हमारा अलंकार है, आभूषण है। बड़ा प्रसन्न होता है उसे धारण करके– मैं ऐसी दार्शनिक दृष्टि वाला, ऐसी दार्शनिक मान्यता वाला, अरे! मेरा क्या कहना! बस, समझो दीवारें खड़ी हो गयीं।

और दार्शनिक मान्यताएं भी कितनी! इस शरीर के भीतर एक आत्मा है। किसी की मान्यता है– आत्मा नहीं है। देखा किसी ने नहीं, पर मानता है, आत्मा है। अब चिपक गया उसके साथ। और जो कहता है– आत्मा नहीं है, उसने भी खोज नहीं की। अपने भीतर एक-एक अणु-परमाणु को अलग कर-कर के खोज लेवे और कहे भाई! हमने देख लिया, भीतर कुछ नहीं है, तो भी मानें इसने कुछ जान लिया! कुछ नहीं करता, फिर भी कहता है– आत्मा नहीं है। जो कहता है आत्मा है, अब उसके तमाशे देखो – एक कहता है जितना बड़ा शरीर, उतनी बड़ी आत्मा है। दूसरा कहे- ऐसा नहीं, आत्मा तो अंगुष्ट प्रमाण है, हृदय की गुफा में अंगूठे के जितनी बड़ी! जो नहीं मानता, वह पागल। सारे जीवन-भर लड़ेंगे।

फिर एक कहता है– अरे, अंगूठे जैसी नहीं, तिल के जैसी है। एक कहता है– अरे, तिल जैसी भी नहीं, बाल के जैसी। जो बाल के जैसी मानता है, वह सम्यक दृष्टि, बाकी सब मिथ्या दृष्टि। न बाल वाले ने बाल जैसी देखी, न तिल वाले ने तिल जैसी, पर चिपका है!

ऐसे ही एक कहता है- संसार को बनाने, पालने व नष्ट करने वाला एक परमात्मा है। दूसरा कहता है - नहीं है। दोनों ने कोई अनुभव नहीं किया। जो 'है' कहते हैं उनका भी तमाशा-- वह कैसा है? दो हाथ वाला; नहीं, चार हाथ वाला; नहीं, सौ हाथ। काले रंग.. गोरे रंग वाला। ऐसे नाक-नक्शे वाला...। अरे! नहीं, वह तो निर्गुण, निराकार है। सब आपस में लड़े जा रहे हैं, जाना-वाना किसी ने नहीं। जानने की कोशिश भी नहीं की, केवल मान रहे हैं। जहां यह मानना चलता है, वहां बंधन ही बंधन। विपश्यना में आगे नहीं बढ़ पायगा।

अरे, इसको एक ओर रखें! अभी मैं इस लायक नहीं हुआ कि इस बात को या उस बात को सही मानूं, क्योंकि जान नहीं पाया। अच्छा भाई! इसे एक ओर रखें। हम राग, द्वेष दूर करने का काम कर रहे

हैं न! अपने बंधन खोलने का काम कर रहे हैं न! मन को निर्ग्रंथ, निर्लिप्त बनाने का काम कर रहे हैं न! तब कोई आत्मा है भी तो उसका कल्याण ही होगा। रहे, हमारा क्या बिगाड़ती है? और नहीं है तो काहे अपने सिर पर बोझ उठाये फिरें? हमको तो अपने मन को वीतराग, वीतद्वेष करना है, विकार निकाल कर गांठें खोलनी हैं। बस, इतनी बात जिसके समझ में आ गयी, वह झगड़े में नहीं पड़ेगा। भाई! हमको क्या लेना-देना? है तो भी, नहीं है तो भी, हमको तो हमारे मन के इस गंदे स्वभाव को पलटना है। राग-रंजित रहने वाले स्वभाव को वीतराग वाला बनाना है। द्वेष-दूषित रहने वाले स्वभाव को द्वेष-मुक्त वाला बनाना है। और यही काम हम कर रहे हैं।

ऐसे ही अगर सारे संसार को बनाने वाला कोई ईश्वर है तो बड़ी अच्छी बात। खुश ही होगा न! जब वह देखेगा कि यह मेरी संतान, मेरी प्रजा, मेरे बनाये हुए नियमों के अनुसार अपने चित्त को निर्मल करने का काम कर रही है, मन को मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा से भरने का काम कर रही है, तो कौन बाप होगा जो अपने बेटे को, अपनी बेटी को, अच्छे रास्ते चलते हुए देख कर भी खुश नहीं होगा? बड़ा खुश होगा। अच्छा ही कर रहे हैं न! और नहीं है, तो उसका बोझ क्यों उठायें अपने सिर पर? हमारे इस काम में उसका क्या लेना-देना रे! हम तो राग, द्वेष को दूर करने का अभ्यास कर रहे हैं। यह बात जो आदमी जितनी जल्दी समझ जाता है, और फिर इसी काम में लग जाता है कि 'एके साधे सब सधे' – मैंने चित्त को राग-द्वेष विहीन करने का काम साध लिया, तो दार्शनिक मान्यताओं से कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। कल्याण निश्चित रूप से होगा। एक ही बात साधनी है कि अंतर्मन की गहराईयों तक मेरे मानस का राग, द्वेष कम हो रहा है कि नहीं? अंतर्मन की गहराईयां शरीर की संवेदना से मापी जाती हैं क्योंकि वह हमेशा शरीर की संवेदना से जुड़ा रहता है। संवेदनाओं को महसूस करते हुए भी हम राग, द्वेष नहीं पैदा कर रहे, तो अंतर्मन की गहराईयों तक समता में स्थापित हो रहे हैं, सचमुच सामायिक में स्थापित हो रहे हैं। और बाकी मान्यता चाहे सो हो।

इसी तरह एक और दीवार है 'विचिकित्सा'। संदेह होता है – अरे, यह क्या करने लगे? यह तो हमारी मान्यता के मुताबिक नहीं! यह तो हमारे धर्म के मुताबिक नहीं न! यह हमारा धर्म, यह तुम्हारा धर्म! अरे, धर्म हमारा, तुम्हारा कैसे हुआ भाई! राग-द्वेष से मुक्ति पाना सबका धर्म, सबके लिए कल्याणकारी। राग-द्वेष से मुक्ति नहीं पाये तो अमुक कर्मकांड, अमुक मान्यता इसका धर्म; अमुक कर्मकांड, अमुक मान्यता उसका धर्म। क्या मिलेगा उससे? जड़ें सुधारनी है न! यह बात समझ में नहीं आये तो संदेह ही संदेह पैदा करेगा, शक ही शक पैदा करेगा और आगे नहीं बढ़ पायगा।

हमेशा जांचता रहे कि इन तीनों में से कोई दीवार तो आगे नहीं आ रही? कहीं कोई शीलव्रत परामर्श, कोई कर्मकांड, कोई दृष्टि या दर्शन की मान्यता मेरे सामने दीवार तो नहीं पैदा कर रही? इसी तरह ये जो शंका-संदेह मन में आते हैं, ये कोई दीवार तो नहीं पैदा कर रहे? जब-जब शंका-संदेह आये तो अपने मार्गदर्शक से बार-बार मिलें। शिविरों में मिलें, शिविरों के बाहर भी मिलें, अपनी शंकाएं दूर करें। तो देखेंगे ये तीनों दुश्मन अलग होते जा रहे हैं, तो एकदम आगे बढ़ते ही चले जायँगे। मन को दृढ़ करके आगे बढ़ना है।

एक और बात जो हमने अनेकों के अनुभव से और बर्मा में रहते हुए खुद भी देखा कि यह जो राग, द्वेष और मोह के विकारों का पतन की ओर जाने का जो स्वभाव है, उसके लिये हमको चारों ओर का वातावरण, सारे हमारे संगी-साथी जितने हैं, वे उसी रास्ते जाने वाले हैं तो उनसे बहुत बल मिलता है, बहुत सहारा मिलता है। उस रास्ते के विपरीत दिशा में जाना हो तो वैसे संगी-साथी होने चाहिए, वैसा वातावरण होना चाहिए, जो मिलता नहीं। इसके लिए प्रयत्न करना बहुत जरूरी है कि कम से कम सप्ताह में एक बार तो विपश्यियों की संगत में बैठेंगे। घंटे-भर बैठ कर के सामूहिक साधना करेंगे, किसी की कोई चर्चा सुनेंगे, कोई अनुभव सुनेंगे। धर्म सम्बंधी, साधना सम्बंधी कोई बात सुनेंगे तो प्रेरणा जागेगी। अरे, सप्ताह भर तो यही रहा कि ऐसे ही संगी-साथी मिले जो राग-द्वेष की ओर घसीटने वाले रहे। अब सप्ताह में थोड़ी देर के लिए तो ऐसे संगी-साथी मिलें जो बेचारे प्रयत्न तो करते हैं कि राग के बाहर कैसे निकलें, द्वेष के बाहर कैसे निकलें? उनकी संगत कम से कम सप्ताह में एक बार तो हो। नहीं हुई एक सप्ताह में, तो पंद्रह दिन में एक बार हो। पंद्रह दिन में भी नहीं हुई तो महीने में तो एक बार हो ही।

एक शिविर ले लिया और उसके बाद भूल-भाल गये। किसी से हमारा संपर्क ही नहीं, न साधना के शिविर से, न सेंटर से, न साधकों से, तो भाई! फिर तो छूट ही जायगी न! छोड़ ही देगें न! छोड़ना नहीं है तो संपर्क बनाये रखना चाहिए। दस दिन के शिविर में आने का समय नहीं निकाल सके तो बम्बई वालों के लिए तो बहुत कठिन बात नहीं है, इगतपुरी तीन घंटे का रास्ता है। शनिवार को चले गये शाम को, रात वहीं इगतपुरी में सोये, दिन भर धर्म के वातावरण में साधनारत रहे, रविवार की रात वहीं रहे, सुबह वहां से निकल जायँ, फिर अपने काम-धंधे में लग गये। एक दिन का जो वहां बल मिला धर्म का, अपनी बैटरी (battery) फिर चार्ज हो गयी। सात दिन के लिए फिर हमारे पास बड़ा बल आ गया। पंद्रह दिन के लिए बड़ा बल आ गया। कम से कम यह जो संगत का लाभ है, वातावरण का लाभ है, वह साधक को लेना चाहिए। कमजोर भी हो जायँ तो अपने दस, बीस, पचास, सौ गुरुभाई-गुरुबहनों के साथ बैठ करके हम ध्यान करेंगें तो उनमें से न जाने किसका ध्यान बहुत अच्छा हो रहा है, किसकी तरंगें बहुत अच्छी जाग रही हैं, उससे हमारे भीतर प्रेरणा जागने लगेगी। हमारी भी तरंगें ठीक जागने लगेंगी, फिर हमारा कल्याण होने लगेगा। ऐसे समझदारी के साथ इसको बढ़ाना है।

चाहते तो हम बहुत हैं, हमारी बहुत मंगल कामना है कि सब लोग धर्म में खूब पकें, खूब पकें प्रज्ञा में। पर केवल हमारी मंगल कामना से ही काम नहीं होगा, केवल तुम्हारे चाहने से भी काम नहीं होगा, इसके लिए कुछ करना पड़ेगा, परिश्रम करना पड़ेगा, पुरुषार्थ करना पड़ेगा। यह पुरुषार्थ नहीं भूलें। रोज-रोज की सुबह-शाम की बैठक नहीं भूलें। सप्ताह में एक बार भले थोड़े से ही गुरुभाई, गुरुबहनों के साथ, पर बैठना नहीं भूलें। अभी प्रारंभ में यह जो घोषणा हुई, इसे सुन करके बड़ी प्रसन्नता हुई कि तीन-चार जगह तो ऐसी निश्चित हो गयी, जहां पर लोग रोज साधना कर सकते हैं। रोज न कर सकें तो सप्ताह में एक दिन कर सकते हैं। ऐसे ही और भी स्थान निश्चित हो जायँ। बम्बई जैसी महानगरी! बीस-पच्चीस का स्थान क्या बड़ी बात है? हो जाय, तो भले दस लोगों को लाभ हुआ, बीस को लाभ हुआ। इस सप्ताह इन दस को हुआ, अगले सप्ताह और किसी को हुआ। यूं होते-होते लोगों में धर्म पुष्ट होने लगेगा, प्रज्ञा पुष्ट होने लगेगी। अपने प्रयत्नों से ही होगी।

खूब प्रयत्न करें, खूब परिश्रम करें, खूब पुरुषार्थ करें और सही माने में अपना मंगल साध लें, सही माने में अपना कल्याण साध लें, सही माने में अपनी स्वस्ति-मुक्ति साध लें। जिन-जिन के भीतर धर्म का बीज पड़ा है, उन सबका धर्म विकसित हो! जिन-जिन के भीतर प्रज्ञा जागी है, उन सब की प्रज्ञा विकसित हो! पुष्ट हो! सबका मंगल हो! सबका कल्याण हो!

कल्याण मित्र,

सत्यनारायण गोयन्का

Registered No. NSK/235/2015-2017

पगोडा पर रात भर रोशनी का महत्त्व

पूज्य गुरुजी बार-बार कहा करते थे कि किसी धातु-पगोडा पर रात भर रोशनी रहने का अपना विशेष महत्त्व है। इससे वातावरण धर्म एवं मैत्री-तरंगों से भरपूर रहता है। सगे-संबंधियों की याद में ग्लोबल पगोडा पर रोशनी-दान के लिए प्रति रात्रि रु. ५०००/- निर्धारित किये गये हैं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें--

1. Mr. Derik Pegado, 9921227057. or 2. Sri Bipin Mehta, Mo. 9920052156, Email: audits@globalpagoda.org

---

अतिरिक्त उत्तरदायित्व

1.श्री प्रवीण डागा, चेन्नई, धम्म कांची केंद्र के केंद्र-आचार्य के रुप में सेवा

2-3. श्री राजकुमार एवं श्रीमती सरोजनी चौहान, फतेहपुर, धम्म लक्खन, लखनऊ वि.केंद्र के केंद्र-आचार्य के रुप में सेवा

नये उत्तरदायित्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

1. श्री रवि सक्सेना, मुंबई
2. श्री अजीत पारेख, मुंबई
3. श्रीमती अमीता पारेख, मुंबई
4. Mrs. Chinta Samaranayake, Sri Lanka

नव नियुक्ति सहायक आचार्य

१. श्रीमती सुषमा नायक, मुंबई

नव नियुक्तियां बालशिविर शिक्षक

1. श्री सुमेध उराडे, पुणे
2. कु. वर्षा बेंद्रे, पुणे
3. Ms. Suchada Winson, Thailand.
4. Miss Payamas Rammana, Thailand.
5. Mr Hiew Yunfong, Malaysia
6. Mrs Lee Bee-Hia, Malaysia
7. Ms. Tan Ai- Lay, Malaysia

क्षेत्रीय बालशिविर समन्वयक

Mr Jason Lim and Mrs Chiam Kian-Ber – Singapore

मंगल मृत्यु

पंचकुला (चंडीगढ़) के वरिष्ठ सहायक आचार्य कर्नल नानकसिंह इस्सर ने 5 जून 2017 को 93 वर्ष की पकी उम्र में शांतिपूर्वक शरीर त्याग किया। साधना आरंभ करने के साथ ही धर्मपथ पर आगे बढ़ते गये। 1998 में सहायक आचार्य बने और 2002 में वरिष्ठ स.आ.। पंचकुला, चंडीगढ़ और मोहाली (त्रय-शहर) (Tri-city) तथा आसपास के साधक उनके बहुत आभारी हैं जिनके लिए उन्होंने बहुत काम किया और धर्म में पकने में सहायता की। अपने ही घर पर सामूहिक साधना और एक दिवसीय शिविर लगा कर लोगों को नियमित साधना करते रहने के लिए प्रोत्साहित करते रहते। अन्य स्थानों पर भी जाकर धर्मप्रचार की बात करते और सामूहिक साधनाओं में साथ बैठते। उन्होंने सचमुच एक धर्म-सेनापति का काम किया। धर्मपथ पर उनकी प्रगति हेतु धर्म-परिवार की समस्त मंगल कामनाएं, मंगल मैत्री।

ग्लोबल विपश्यना पगोडा में २०१७ के एक-दिवसीय महाशिविर

रविवार, १ अक्टूबर शरद पूर्णिमा एवं **पूज्य गुरुजी की पुण्यतिथि के** उपलक्ष्य में। **समयः** प्रातः ११ बजे से अपराह्न ४ बजे तक ३ बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें और **समग्गानं तपो सुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं।

संपर्कः 022-28451170, 022-62427544, 8291894644 - Extn. 9,

(**फोन बुकिंग : ११** से **५** बजे तक, प्रतिदिन)

Online Regn.: www.oneday.globalpagoda.org

दोहे धर्म के

जहां राग तहँ दुःख है, पीड़ा है परिताप।
वीतराग के ही मिटें, पाप शाप संताप॥
राग जगे तो द्वेष का, बढ़ता जाय प्रभाव।
राग मिटे तो द्वेष का, मिटता जाय स्वभाव॥
राग जगे रोगी बने, द्वेष जगे दुख होय।
हो इस कुल, उस गोत्र का, फर्क पड़े ना कोय॥
राग-द्वेष ही चित्त के, कालिख, कलुष, कषाय।
राग-द्वेष मन के मिटें, तो विमुक्ति-सुख आय॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड

८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड़, वरली, मुंबई- ४०० ०१८
फोनः २४९३ ८८९३, फैक्सः २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net

की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धर्म रा

राग रह्यां तो रैवसी, द्वेस, द्रोह, दुरभाव।
रिसतो रैसी रैन दिन, हिरदै हंदो घाव॥
राग रह्यां तो रैवसी, रोग, सोक, संताप।
राग छुट्यां ही छूटसी, दुक्ख दैन्य परिताप॥
कुदरत तो देखै नहीं, जात बरण कुल गोत।
राग रह्यां तो रैवसी, अंतर दुखड़ा भोत।
राग रह्यां चिपकाव स्यूं, रैवै मन भरपूर।
राग छुट्यां चिपकाव रा, दुखड़ा होज्या दूर॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी

सर्वो स्टॉकिस्ट-इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७
मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: morolium_jal@yahoo.co.in

की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२ ४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, २५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-४२२ ००७. **बुद्धवर्ष २५६१, आषाढ़ पूर्णिमा, ९ जुलाई, २०१७**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-, US $ 10, आजीवन शुल्क रु. ५००/-, US $ 100. 'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/235/2015-2017

Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

DATE OF PRINTING: 24 June, 2017, DATE OF PUBLICATION: 9 July, 2017

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८. **फैक्स :** (०२५५३) २४४१७६
Email: vri_admin@dhamma.net.in;
course booking: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org